सीखने का आनंद या सीखने में आनंद

❑ रविकांत तोषनीवाल

प्राथमिक शिक्षा में इस समय नित नयी अवधारणाएं प्रचलित हो रहीं हैं । ये अवधारणाएं सिर्फ फैशन अथवा तकनीक के रूप में हैं अथवा इनके पीछे कोई गंभीर सोच और सरोकार भी हैं, यह विचार का मुद्दा है । सीखने का आनंद पर इस टिप्पणी के साथ इस विचार-क्रम की शुरुआत की जा रही है।

किसी भी क्षेत्र में, किसी खास वक्त पर कुछ चीजें बहुत लोकप्रिय होती हैं । आमतौर पर उस क्षेत्र से जुड़े लोगों में उनका तगड़ा बोलबाला रहता है । लोग उनका उपयोग भी जमकर करते हैं । शिक्षा और उसमें भी खासतौर से प्राथमिक शिक्षा के आकाश में आजकल ऐसी ही कई चीजों के घनघोर बादल छाये हुए हैं । इनकी टकराहट से निरन्तर गड़गड़ाहट सुनाई देती है और कई बार बिजलियां भी बड़ी तेजी से चमकती हैं । कभी-कभी कुछ ठंडी बूंदे और फुहार भी पड़ती हैं।

ऐसे ही कुछ बादल, जैसे बालकेन्द्रित शिक्षण, गतिविधि आधारित शिक्षण, स्तरानुसार शिक्षण, बहुकक्षीय शिक्षण, आनंददायी शिक्षण या सीखने का आनंद/मजा आदि आजकल प्राथमिक शिक्षा के आकाश में उमड़-घुमड़ रहे हैं । इन बादलों के शोर और इनसे पैदा हुई बिजली की चकाचौंध से प्रभावित होकर कई प्राथमिक शिक्षण कार्यक्रम इनका उपयोग भी कर रहे हैं । अत: इन बादलों की थोड़ी गहराई से छानबीन जरुरी हो जाती है ।

''आनंददायी शिक्षण'' या ''सीखने का मजा'' भी एक ऐसी ही चीज है, जो आजकल प्राथमिक शिक्षा में जोरशोर से प्रचलित है। इसके पक्ष में एक बात यह कही जाती है कि स्कूलों में बच्चों को सीखने का मजा नहीं आता, आनंददायी माहौल नहीं मिलता । इसलिए उनकी रुचि स्कूल आने में नहीं रहती और धीरे धीरे वे स्कूल छोड़ देते हैं अत: बच्चों को स्कूल में पुन: लाने के लिए आनंददायी शिक्षण एवं सीखने का मजा पर सबसे अधिक ध्यान देने की जरुरत है ।

इस बात को ध्यान से देखने पर एक चीज साफ होती है कि यह बात उन बच्चों के संदर्भ में कही जा रही है जो अपनी जिन्दगी के किसी हिस्से में स्कूल आये और फिर स्कूल छोड़ गये। इसमें उन बच्चों की कोई जगह नहीं हैं जो कभी स्कूल गये ही नहीं हैं ।

यहां एक प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि क्या बच्चों की शिक्षा/स्कूल में रुचि न होना ही उनके स्कूल न आने का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण कारण है ? क्या इतना ही बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण सामाजिक स्थितियां नहीं है जिसमें आमतौर पर वयस्कों के लिये शिक्षक बनना अन्तिम चुनावों में से एक होता है । प्राथमिक शिक्षक तो बना ही तब जाता है जब अन्य कोई रास्ता न बचा हो । अर्थात प्राथमिक शाला के शिक्षकों की शिक्षा देने में रुचि न होना भी क्या एक बड़ा कारण नहीं है ? जो बच्चों को शाला से बाहर धकेलने में छुपे तौर पर मदद करता है । इसी तरह और भी महत्वपूर्ण कारण हो सकते हैं । यहां कहने की कोशिश यह की जा रही है कि किसी एक कारण को सबसे बड़ा मान लेने पर अन्य महत्त्वपूर्ण कारणों के पृष्ठभूमि में चले जाने का खतरा बना रहता है।

सीखने का मजा या आनंददायी शिक्षण को शिक्षा के केन्द्र या बीचों बीच रखते समय यह बात भी कही जाती है कि इससे समाज व अभिभावकों को यह नजर आने लगेगा कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया सुरुचिपूर्ण, मजेदार ओर उपयोगी हो सकती है ।

क्या इसमें यह खतरा निरन्तर बना नहीं रहता कि धीरे धीरे मजा, रोचकता और उपयोगिता तो मुख्य रह जाये क्योंकि ये चीजें आसानी से दिखाई पड़ती हैं और दिखलाई भी जा सकती हैं और सीखने-सिखाने की बात गौण हो जाये ?

इसके साथ ही जब सीखने के मजे या शिक्षण के आनंद पर अधिक जोर दिया जाने लगता है तब उस मजे या आनंद के उत्सव में तब्दील होने की संभावना रहती है । ऐसी हालत में क्या उत्सव-धर्मिता के पाखंड के खतरे से बच पाना संभव हो पायेगा ।

यहीं एक बात और ध्यान देने की है कि क्या सीखना या शिक्षण हमेशा आनंददायी होता भी है अथवा यह सीखने सिखाने की एक स्थिति मात्र है ?

अपने अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शायद सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में कई उतार-चढ़ाव आते रहते हैं । कभी निराशा भी होती है, परेशानी, निस्सहायता भी महसूस होती है तो कभी अच्छा भी लगता है । यदि ये अनुभव ठीक हैं तो क्या सीखने-सिखाने के दौरान पैदा हुए कई हालातों में से किसी एक हालात पर बहुत अधिक जोर देकर उसका महिमा-मंडन तो नहीं किया जा रहा या भ्रामक स्थिति तो पैदा नहीं की जा रही ?

अन्त में एक बात और, सीखने का मजा पर विचार करते समय इस बात पर भी ध्यान जाता है कि क्या ''सीखने का मजा'' या ''सीखने में मजा'' एक ही चीज है या दोनों के अर्थ अलग-अलग होते हैं । जैसे ''आम का रस'' और ''आम में रस'' अलग-अलग होते हैं । ऐसा लगता है, ''सीखने का मजा'' में सीखना और मजा अलग-अलग माना जा रहा है । अर्थात सीखना पहले हुआ और मजा बाद में आया । जबकि ''सीखने में मजा'' में मजा सीखने में ही शामिल है ।

जब मजे या आनंद को सीखने से अलग करके देखते हैं तो एक संभावना यह भी बनती है कि धीरे-धीरे मजा केन्द्र में आ जाये, सीखना परिधि पर सिमट जाये और शिक्षा जगत के तौर-तरीके मजे या आनंद को आधार मान कर फलें फूलें ना कि सीखना-सिखाने को केन्द्रीय महत्त्व का मुद्दा मान कर। ◆

पढ़ने की अभिलाषा

बेकार की, बिना किसी नतीजे की मेहनत तो बड़ों के लिए भी उबा देने वाली, निरर्थक और घिनौनी हो जाती है, जबकि हमारा वास्ता तो बच्चों से होता है । अगर बच्चा अपने श्रम के परिणाम नहीं देखता, तो ज्ञान-पिपासा की लौ बुझ जाती है, बाल-हदय में उदासीनता की पथरी बन जाती है, जो तब तक नहीं घुल सकती, जब तक कि यह लौ फिर से न जल जाए (उसे दुबारा जलाना तो कितना कठिन है); बच्चा अपनी शक्ति, अपनी योग्यता में विश्वास खो बैठता है, वह मन के सारे कपाट बंद कर लेता है, रूखा और चौकन्ना हो जाता है, अध्यापक के कुछ कहने, सलाह देने पर उद्दंडता से जबाव देता है । या फिर इससे भी बुरी बात यह होती है कि उसमें आत्म-सम्मान की भावना कुंठित हो जाती है, वह इस विचार का आदी हो जाता है कि उसमें किसी भी काम के लिए योग्यता नहीं है ।

अगर बच्चे में पढ़ने की अभिलाषा नहीं है, तो हमारी सारी योजनाएं, सारी नई-नई विधियां, रास्ते, सब धरे के धरे रह जायेंगे, निर्जीव ममी के समान होंगे । यह अभिलाषा पढ़ाई में सफलता के साथ आती है । पढ़ाई में रुचि केवल तभी जागती है, जबकि प्रेरणा है, जो ज्ञान-प्राप्ति में सफलता से मिलती है; प्रेरणा के बिना पढ़ाई बच्चों के लिए बोझा बन जाती है।

वसीली सुखोम्लीन्स्की (बाल हदय की गहराइयां)